

## हिन्दू धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण

हिन्दू धर्म में प्रकृति को देवी के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। पर्यावरण मात्र भौतिक अथवा लौकिक वातावरण तक ही सीमित नहीं है, अपितु समस्त ब्रह्माण्ड, जिसके निर्माण में आकाश, पृथ्वी, जल, वायु एवं अग्नि की अहम् भूमिका से संबन्धित है। वेदान्त दर्शन का प्रमुख मंत्र है आकाशः शान्तिः, वायुः शान्तिः, अग्नि शान्तिः, पृथ्वीः शान्तिः, सर्वांगं शान्तिः अर्थात् प्रकृति के इन उपादानों की उपासना सर्वत्र शान्ति के लिए की गई है। यदि प्रकृति का अत्यधिक दोहन होता है तो पर्यावरणीय प्रदूषण तो होगा ही और साथ ही प्रत्येक प्राणी के जीवन के अस्तित्व को भी खतरा हो सकता है। प्रकृति को वस्तुतः जीवन का पर्याय माना जा सकता है यदि प्रकृति का विनाश इसी गति से होता रहा तो मनुष्य मात्र का जीवित रहना दूभर हो जायेगा।

भारतीय ग्रंथ इस तथ्य का प्रमाण हैं कि कृष्ण ने गोकुलवासियों को इन्द्र की पूजा की अपेक्षा गोवर्धन पर्वत की पूजा हेतु उदबोधित किया था। आज गंगा, यमुना, सरस्वती हमारी पूजनीय नदियाँ हैं। दक्षिण एवं उत्तर भारत में आज भी प्रातःकाल इनका नाम लेकर स्वयं को धन्य समझा जाता है, जो राष्ट्रीय एकता के भी प्रतीक हैं।

भारतीय शास्त्रों, प्रमुखतः वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों, उपजीवीय धार्मिक ग्रन्थों, ने सदैव सूर्य, अग्नि, जल, वायु, इन्द्र आदि की पूजा का प्रावधान रखा था। इतना ही क्यों, पीपल, बड़, तुलसी के पेड़-पौधों को देवतुल्य समझकर उनकी आराधना एवं पूजा की जाती रही है। कल्पवृक्ष तो सभी मनोकामनाओं एवं सिद्धि को प्राप्त करने का सहज साधन है, ऐसी मान्यता हिन्दू धर्म की रही है। अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी को अर्घ्य देने से तथा यज्ञों के माध्यम से आहुति देने से इन्द्र देव प्रसन्न होकर वर्षा करते हैं, जिससे प्रकृति विकसित,

प्रस्फुटित एवं प्रफुल्लित होकर मानव मात्र की आवश्यकताओं की सम्पूर्ति करती है, जो मनुष्य मात्र के लिए आवश्यक संसाधन है।

## श्री राम की पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता

‘रामायण’ का एक प्रकरण इसी संदर्भ में उपलब्ध है, जब श्री राम अपनी पत्नी सीता को प्राप्त करने के लिए श्रीलंका जाना चाहते थे, सागर को लांगना वांछित था और तभी लंका पहुंचा जा सकता था। श्रीराम ने सर्वप्रथम सागर देवता की आराधना की थी और देवता ने प्रकट होकर सागर पार जाने के लिये श्रीराम से कहा भी था कि यदि वे चाहें तो जल का शोषण कर मार्ग बना सकते हैं। परन्तु श्रीराम ने सागर देवता से यही अनुरोध किया था, कि वे सागर की अपनी मर्यादा को तोड़ना नहीं चाहते। उन्होंने केवल यह चाहा था कि सागर केवल अपने प्रचण्ड स्वरूप को बदल कर शान्त रूप धारण कर ले, ताकि सागर में सेतु का निर्माण संभव हो सके। राम स्वयं भी मानवीय मर्यादा को त्याग कर सागर जल का अवशोषण कर सकते थे। पर ऐसा नहीं किया, इसका आशय है कि स्वयं श्रीराम मर्यादा में रहे और उन्होंने यह भी नहीं चाहा कि सागर अपनी स्वतन्त्रता, अनन्तता, विशालता व मर्यादा का निर्वाह छोड़ दे। यह प्रसंग प्रमाणित करता है कि उस काल में भी मानव पर्यावरण के प्रति कितना संवेदनशील था। यदि आज भी मानव अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहे, तो बहुत सारी प्रदूषण सम्बन्धी समस्याओं से छुटकारा पा सकता है।

सम्पूर्ण जगत के जीव चार योनियों में विभक्त किए गए हैं : जरायुज, अण्डज, स्वेज व उद्भिज।

गोस्वामी तुलसीदासजी ‘रामचरितमानस’ में लिखते हैं :

**चारि खानि जग जीव अपारा।**

**अवध तजें तनु नहिं संसारा।।**

इनमें से वृक्ष, लता व तृण (घास) आदि उद्भिज कहलाते हैं। यही प्राणी मिलकर प्रकृति की रचना करते हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि प्राण की उत्पत्ति सर्वप्रथम पेड़-पौधों में हुई। परन्तु प्राण का वास ‘जीवद्रव्य’ में होता है। करोड़ों वर्ष पूर्व उत्पन्न एककोशीय जीव ने जीवद्रव्य का रूप धारण किया। यही जीवद्रव्य जीवन का भौतिक आधार है।

## मनुस्मृति एवं पर्यावरण संरक्षण

हिन्दू धर्मग्रन्थों में तो अहिंसा का पर्याप्त रूप देखने को मिलता है।

मनुस्मृति मनुष्य के आचार और व्यवहार की एक स्वीकृत संहिता है। इसमें ऐसे अनेक श्लोक हैं जिनमें हिंसा का विरोध किया गया है। पशुओं की हत्या करने वाला केवल हिंसक विरोध किया गया है। पशुओं की हत्या को विस्तृत रूप में वर्णित किया है। मनुस्मृति 5.5 में लिखा है—

‘जो व्यक्ति पशु हत्या की आज्ञा देता है, जो पशुओं को काटता है, जो उन्हें मारता है, जो मांस बेचता या खरीदता है, जो उसे परोसता है और जो उसे खाता है वे सब हत्या के दोषी हैं। इसी प्रकार 5.45 में लिखा है—अपने आनन्द के लिए जो निर्दोष पशुओं का वध करता है, उसे न ता जीवित रहते और न मरने के बाद कभी खुशी प्राप्त हो सकती है।’

‘मनुस्मृति’ में तो वृक्ष—संहारक को पापी घोषित किया है, जबकि ‘मत्स्य पुराण’ में वृक्षसंहार हेतु दण्ड का स्पष्ट विधान है।

## उपनिषद् एवं पर्यावरण संरक्षण

उपनिषद् शब्द ‘उप’ और ‘नि’ उपसर्गपूर्वक सद् धातु से बना है, जिसका अर्थ है ‘किसी के पास बैठना’। इस प्रकार उपनिषद् शब्द का अर्थ, वह शास्त्र अथवा विद्या जो गुरु के निकट बैठकर एकान्त में सीखी जाती है। किन्तु तैत्तिरीय उपनिषद् की अपनी टीका की प्रस्तावना में शंकराचार्य ने लिखा है, कि यह वह ज्ञान है जिससे जन्म—जरा—मरण का दुःख दूर हो जाता है और उच्चतम मंगल की उपलब्धि होती है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने उपनिषद् शब्द का अर्थ बताते हुए कहा है कि उपनिषद् शब्द का अर्थ उस ज्ञान से है जो भ्रम को नष्ट कर यथार्थ ज्ञान की ओर ले जाता है। दूसरे शब्दों में उपनिषद् का अर्थ है—अध्यात्म विद्या या ब्रह्म विद्या। उपनिषदों को वेदान्त भी कहा गया है, क्योंकि वैदिक साहित्य में उपनिषदों का स्थान सबसे अन्त में आता है। उपनिषदों को इस अर्थ में भी वेदान्त कहा गया है कि इनमें वेदों का निचोड़ है।

उपनिषदों में पशुहिंसा व मानवबलि जैसी क्रियाओं को निषिद्ध बताया है। क्योंकि धर्म का पालन करते हुए श्रेय प्राप्ति जीव—हत्या से उपलब्ध नहीं हो सकती। प्रकृति ने जिस प्रकार मनुष्य की संरचना की है, उसी प्रकार उनकी भी। प्रकृति की दृष्टि में उसके द्वारा निर्मित सभी जीव समान हैं, जिस प्रकार मां के लिए उसके बच्चे समान रूप से प्यार व संरक्षण प्राप्त करते हैं। जब मां की सन्तानें एक दूसरे का विध्वंस करने पर उतारू हो जाती हैं, तो उसे कष्ट होना स्वाभाविक है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य जब पेड़—पौधों व जीव—जन्तुओं को अपने आहार व आमोद—प्रमोद हेतु समाप्त करता है तो प्रकृति रूषी मां को

कष्ट तो होगा ही, जिससे पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ जायेगा और पर्यावरण प्रदूषित हो जायेगा। सारी सृष्टि ब्रह्म से व्याप्त है। हिंसा की भावना को कोई स्थान न मिलन से ऐसी धारणा बनने लगी है कि मनुष्य के समान ही पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी हिंसा नहीं, प्रेम और आदर प्राप्त करने के अधिकारी हैं क्योंकि पेड़-पौधों एवं जीव-जन्तुओं को प्रकृति ने मनुष्य से पहले बनाया है। अतः प्रकृति में रहने वाले सभी जीवों को स्वाभाविक क्रियाएं करने की स्वतन्त्रता देने से ही पारिस्थितिक संतुलन बना रह सकता है और पर्यावरण को शुद्ध बनाये रखने हेतु, प्रकृति को हृदय से प्यार व श्रद्धा करने की महती आवश्यकता है। ब्राह्मण-ग्रंथों में कहीं भी, किसी भी जीव की हत्या व पेड़-पौधों को काटने का आदेश मनुष्य को प्रदत्त करने के सम्बन्ध में आलेख उपलब्ध नहीं है।

उपनिषदों में वायु की भी व्याख्या की गई है। वायु में वेदीय शक्ति की अवधारणा निहित है। इनका कहना था कि वायु ही 'प्राण' बनकर शरीर में वास करती है। भारतीय संस्कृति में जल को भी देवतास्वरूप माना गया है— वरुण देवता इसील का पर्यायवाची है। कदाचित् पुरातन संस्कृतियां, सरिताओं (नदियों) के किनारे उदित व विकसित हुई हैं। भले ही आज मूल्य बदल गये हों परन्तु, हमारी प्राचीन संस्कृतियों में सरिताओं, तालाबों व पोखरों में मल-मूत्र विसर्जन की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी।

## पुराण एवं पर्यावरण संरक्षण

भारतीय संस्कृति व सभ्यता में वृक्षों को भी पूजनीय माना जाता है। केला, वट, पीपल, तुलसी आदि इसके अनुकरणीय उदाहरण हैं। भारतीय आयुर्विज्ञानियों का भी मानना है कि विश्व में ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जिसका औषधि के रूप में उपयोग नहीं किया जा सके। संभवतः इसी कारण वृक्षों को भी वन्दनीय समझा गया है। हम देवता उसी को मानते हैं जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा में तत्पर रहे और हमेशा ही कुछ देता रहे, ले कुछ नहीं। वृक्ष अपनी उत्पत्ति के साथ ही अनेक रूपों में प्राणी जगत् को कुछ न कुछ देता ही है। इसलिये पुराणों में वृक्षों के लिये कहा गया है।

**मूले ब्रह्म त्वचा विष्णु साखायाम् महेश्वरम्।**

**पत्रम् सर्वदेवानाम् वृक्ष देव नमोस्तुते।।**

वृक्ष, फूल-पत्तों तथा फलों के बोझ को वहन किये रहते हैं, धूप की तपन तथा शीत की पीड़ा को सहन करते रहते हैं, परन्तु, दूसरों के सुख के लिये अपना शरीर सदैव अर्पित करने में कभी नहीं थकते। ऐसे वन्दनीय श्रेष्ठ को शत-शत नमन। यह वृक्षों के प्रति अनुराग की एक मार्मिक भावना है।

‘मत्स्यपुराण’ ने तो एक वृक्ष को दस पुत्रों के बराबर गिना है—

**दशमकृपसमावापी, दशवापीसमो हदः दशहदसमः पुत्रो  
दशपुत्रसमो वृक्षः।**

‘अग्निपुराण’ ने वृक्ष लगाने वालों को 30000 पितरों का उद्धारक माना है। इतना ही नहीं, इस पुराण ने स्पष्ट रूप से चेतावनी दी है कि अपने धन, वंश तथा भावी सुख की अभिवृद्धि चाहने वाले को किसी भी फल-फूल वाले वृक्ष को नष्ट नहीं करना चाहिए। ‘मनुस्मृति’ में तो वृक्ष-संहारक को पापी घोषित किया है जबकि ‘मत्स्यपुराण’ में वृक्षसंहार हेतु दण्ड का स्पष्ट विधान है।

नारदपुराण में ईश्वर-भक्तों को वृक्ष लगवाने, तालाब, झीलें, खुदवाने, बगीचे लगवाने, जैसे जनहितैषी उपाय सुझाए गये हैं। ये सभी कृत्य स्वास्थ्य और आमोद-प्रमोद की दृष्टि से तो उपयोगी होते ही थे, साथ ही वायु एवं जल को प्रदूषण से बचाते थे एवं पर्यावरण को शुद्ध बनाये रखते थे। मध्यकालीन लेखक यह बताते हैं कि जहाँ कहीं भी किसी भवन का निर्माण किया जावे तो उसके आस-पास वृक्ष का लगवाना अनिवार्य होता था। भवन निर्माण के समय ही मिट्टी की परख कर ली जाती, ताकि मिट्टी में उर्वरकता है या नहीं, का निर्णय हो सके। अच्छी मिट्टी में अधिक वृक्ष लगा कर पर्यावरण को शुद्ध रखा जाता था।

विष्णुपुराण में मनुष्य की दुष्ट प्रकृति के विरुद्ध चेतावनी का एक श्लोक है। हे दुष्टात्मा ! यदि तुमने किसी पक्षी को भून कर खाया तो समझ लो तुम्हारे सारे यज्ञ, पूजा-पाठ, तीर्थयात्राएं और पवित्र नदियों में स्नान आदि व्यर्थ हैं। (विष्णुपुराण 3:8:5)

ब्रह्म पुराण में पृथ्वी की पीड़ा इस प्रकार उल्लिखित है— ‘मैं उन दुष्टों के भार से दबी हुई हूँ जो पशुओं की हत्या करते हैं, गुरुओं से शत्रुता रखते हैं, देशद्रोही हैं, लालची और शवदाती हैं’। ऐसे व्यक्ति मुझ पर (पृथ्वी) पर भार हैं (ब्रह्मवितर्तपुराण कृष्णजन्म खण्ड 4.26) श्लोक अपने आप में संतुष्ट है। पशुओं की हत्या करना और शवदाह के लिए वनखण्डों के वृक्षों को काटना दोनों वर्जित किये गये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हमारे देश की संस्कृति में भक्ति और गुरुओं के प्रति सम्मान की पवित्र भावना का सम्बन्ध उसी से है जो प्रकृति और पशु तक से प्रेम करें, न वृक्ष काटे, न पशु-पक्षी और मनुष्य की हत्या करे।

## **गीता एवं पर्यावरण संरक्षण**

भारतीय मानस को जितना श्रीमद्भगवद्गीता ने प्रभावित किया उतना शायद ही किसी अन्य पुस्तक ने किया हो। गीता को महाभारत का अंग माना

है—

पः पुत्रों

क माना  
न, वंश  
वृक्ष को  
किया

दवाने,  
गस्थ  
जल  
लीन  
वे तो  
मय  
का  
खा

एक  
लो  
र्थ

ग्रे  
६,  
६  
।

जाता है। वैष्णवीय तंत्र ने गीता की जो व्याख्या की है उसमें प्रतीक के रूप में ही सही, पशु जीवन का महत्त्व प्रतिपादित होता है :-

**सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।**

**पार्थो वत्स सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥**

(सारे उपनिषद गाय हैं, कृष्ण उनको दुहने वाले हैं, अर्जुन बछड़ा है और गीता दूध है।)

गीता को उपनिषदों का सार तत्त्व माना जाता है। गीता में कई श्लोक हैं जिनमें रूपकों, प्रतीकों, दुष्टांतों एवं सूत्रों के माध्यम से प्रकृति के उपकरणों का वर्णन है। यदि ईश्वर अपना सामंजस्य अपनी रचना के साथ इस सीमा तक करता है तो स्पष्ट है कि इस रचना को नकारा नहीं जा सकता। अर्थात् वनस्पति, नदियां, पहाड़, पक्षी, पशु, जलचर, थलचर और मनुष्य सभी इस प्रकृति के महत्त्वपूर्ण अंग हैं और सबका संरक्षण, पोषण और विकास होना आवश्यक है।

गीता में कर्म को प्रधानता दी गई है। “कर्मण्ये.....कदाचित्॥” बिना फल की इच्छा किये ही कर्म करना तो अनिवार्य है। क्या हम ऐसे काम करें जो प्रकृति के प्राणियों को विनाश करने वाले हों, या पर्वतों, वनांचलों, वादियों और नदियों के प्राकृतिक सौंदर्य और सम्पदा का विनाश करने वाले हों अथवा ऐसा कर्म करें जिससे जीवन में निरन्तर खुशहाली बनी रहे ? गीता यह कथन कि इस लोक में ज्ञान से अधिक पवित्र और कुछ नहीं है— मनुष्यों के लिए मार्गदर्शक बन सकता है। प्रकृति के साथ मित्रता रखना ही हमारे ज्ञान का प्रमाण हो सकता है।

गीता में प्रकृति के महत्त्व का उल्लेख है। इस प्रकृति के दो रूप हैं— परा और अपरा। पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) के साथ—साथ मानव मन अपरा प्रकृति का रूप है। परा प्रकृति आत्मा से सम्बन्धित है। यानी प्रकृति का विस्तार भौतिक पक्ष से लेकर आध्यात्मिक पक्ष तक है। गीता में प्रकृति को ईश्वर की माया के रूप में दर्शाया गया है। गीता के कुछ श्लोकों का शब्दानुवाद यहां प्रस्तुत है, जो प्रकृति के वैशिष्ट्य और जीव जगत की स्थिति को स्पष्ट करता है :-

1. मैं आदित्यों में विष्णु, प्रकाशकों में अनेक किरणों से भूषित सूर्य, सद्गुणों में मरीचि और नक्षत्रों में चंद्र हूँ, आठ वस्तुओं में अग्नि हूँ, पर्वतों में सुमेरु और जलाशयों में समुद्र हूँ। मैं वृक्षों में पीपल, गजेन्द्रों में ऐरावत और मनुष्यों में राजा हूँ। गायों में कामधेनु, सर्पों में वासुकि, नागों में शेषनाग, जलचरों में वरुण, मृगों में सिंह तथा पक्षियों में गरुड़ हूँ। मैं मछलियों में मगर और नदियों में गंगा हूँ।

2. जो तेज सूर्य और चंद्रमा में है, उसे मेरा ही तेज मानो। मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके सभी भूत प्राणियों को धारण करता हूँ। चंद्रमा बनकर औषधियों का पोषण करता हूँ। जठराग्नि बनकर प्राणियों की देह में प्रविष्ट हूँ। प्राणवायु, अपान वायु में संयुक्त होकर चारों प्रकार (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह) से भोजन किए हुए प्राणियों के अन्न को पचाता हूँ। सम्पूर्ण भूतों (प्राणियों) के हृदय कमल में निवास करता हूँ।

श्रीमद्भागवत में एक कथा है कि नागराज वासुकि के रहने से वृंदावन में यमुना का जल विषाक्त हो गया था, जिसे पी-पीकर ग्वाल-बाल तथा बछड़े मर जाया करते थे। इसीलिए कृष्ण ने नागराज को दंड दिया था और यह निर्देश दिया था कि वह अब अपना जह यमुना में विसर्जित नहीं करेगा, किन्तु आज कोई कृष्ण नहीं है। यमुना का जल किसी नागराज द्वारा नहीं, बल्कि प्रदूषण से विषाक्त किया जा रहा है, जो पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व को दर्शाता है।

## आर्य समाज एवं पर्यावरण संरक्षण

स्वामी दयानन्द तथा उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज के सभी मौलिक सिद्धान्तों का परिचय हमें उनके महान ग्रन्थ, 'सत्यार्थ प्रकाश' में मिलता है। इस ग्रन्थ के आधार पर आर्य समाज के निम्नलिखित दस नियम हैं—

1. ईश्वर एक है तथा वह निराकार है। वह सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, निर्विकार, सर्वव्यापक, अजर, अमर, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। अतः उसकी उपासना करने योग्य है।
2. वेद ही सच्चे ज्ञान के स्रोत हैं। अतः वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
3. प्रत्येक व्यक्ति को सदा सत्य ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए तैयार रहना चाहिये।
4. सब कार्य धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये।
5. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् सबकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
6. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।
7. समस्त ज्ञान का निमित्त कारण और उसके माध्यम से समस्त बोध ईश्वर है।

8. प्रत्येक को अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।
9. सभी से धर्मानुसार, प्रीतिपूर्वक यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये।
10. व्यक्तिगत हितकारी विषयों में प्रत्येक व्यक्ति को आचरण की स्वतन्त्रता रहे परन्तु सामाजिक भलाई से सम्बन्धित विषयों में सब मतभेदों को भुला देना चाहिये।

उपरोक्त नियमों का पालन एवं मन्त्रोच्चारण द्वारा यज्ञ-हवन करने की परम्पराएं इस प्रदूषित पर्यावरण को शुद्ध बनाये रखने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। अतः आर्यसमाज आज के इस आधुनिक व वैज्ञानिक युग में 'पर्यावरण संरक्षण' में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

